धार्मिक समरसता के सन्दर्भ में योगदर्शन की उपादेयता

पूजा सिंह, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

शोध–पत्र-सार

हजारों वर्षों से सम्पूर्ण विश्व में कहीं न कहीं धर्म तथा जाति पर आधारित संघर्ष होते आ रहे हैं जहाँ सर्व प्रथम मानवता और मानव हितों की रक्षा का स्थान होना चाहिए वह स्थान जातिवाद, सांप्रदायिकता तथा नस्लभेद ने ले लिया है मानव स्वाभाव तो समरसता का है| फिर समय-समय पर उत्पन्न होने वाले धार्मिक एवं नस्लीय तनाव के कारण क्या है और इस प्रकार के धार्मिक संघर्षों से मुक्ति पाकर धार्मिक समरसता का सूत्रपात कैसे हो|

योग भारतीय दर्शन की इस विश्व को प्रदत्त सर्वाधिक समीचीन सम्पत्ति है| यह एक मात्र ऐसा दर्शन है जो समस्त सम्प्रदायों के मत मतान्तर से शून्य है| योग एक मानस शास्त्र है, जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों से खींचना सिखाया जाता है| योगशास्त्र के प्रणेता ने मन के साथ-साथ धार्मिक क्षेत्र में भी कार्य लिया है।

योग में समत्व की बात है, कुशलता की बात है योग समरसता का प्रतिपादक है| योग स्वयं कोई धर्म सम्प्रदाय या धर्मविषयक तत्वज्ञान नहीं है, प्रत्युत यह संसार के सभी धर्मों और तत्त्वज्ञानों का सहायक है इसे किसी धार्मिक सिद्धान्त का प्रचार नहीं करना है संसार के सभी धर्म वालों को इसके द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि अपने-अपने धर्म विषयक विषय में चित्त को एकाग्र करके शान्ति और आनन्द की प्राप्ति कैसे की जा सकती है| अष्टांग योग के प्रतिपादन में महर्षि पतञ्जलि ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह, सन्तोष तथा तप इत्यादि महत्वपूर्ण मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन किया है, जो वैश्विक परिपेक्ष्य में धार्मिक समरसता स्थापना हेतु नितान्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं|

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से धार्मिक समरसता के सन्दर्भ में योगदर्शन की उपादेयता पर विस्तृत प्रकाश डाला जाएगा|

शब्द-संकेत

1. **यो. सू.** – योगसूत्र
2. **भ. गी.** – भगवद्गीता
3. **पा. यो. द.** - पातञ्जलयोगदर्शनम्
4. **महा. अनु. प.** - महाभारत अनुशासनपर्व
5. **या. सं.** - याज्ञवल्क्य संहिता
6. **म. स्मृ.** – मनुस्मृति
7. **कू. पु.** – कूर्मपुराण

योग एक मानस शास्त्र है, जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों से खींचना सिखाया जाता है। जीवन की सफलता, किसी भी क्षेत्र में संयत मन पर भी निर्भर करती है। मन के संयमन से अभिप्राय है इसे किसी वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना| मन के इस विशिष्ट धर्म से योगशास्त्र के प्रणेता ने धार्मिक क्षेत्र में भी कार्य लिया है। योग का लक्ष्य उसकी परिभाषायों से ध्वनित होता है –

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः|[1] -यो. सू.

समत्वं योग उच्यते|[2] -भ. गी.

योगः कर्मसु कौशलम्|[3] -भ. गी.

योग में समत्व की बात है, कुशलता की बात है। योग समरसता का प्रतिपादक है| योग स्वयं कोई धर्म सम्प्रदाय या धर्मविषयक तत्वज्ञान नहीं है, प्रत्युत यह संसार के सभी धर्मों और तत्त्वज्ञानों का सहायक है। इसे किसी धार्मिक सिद्धान्त का प्रचार नहीं करना है। संसार के सभी धर्म वालों को इसके द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि अपने-अपने धर्म विषयक विषय में चित्त को एकाग्र करके शान्ति और आनन्द की प्राप्ति कैसे की जा सकती है| पातञ्जल योग सूत्रों में जिस विषय का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है, वह है 'चित्तवृत्तिनिरोध' अर्थात अन्य विषयों से चित्त को खींचकर एक ही विषय में एकाग्र करना। मन को एकाग्र करने की शक्ति निरंतर अभ्यास और सांसारिक भोगों से निवृत्ति से प्राप्त होती है। सूत्र 23 और 39

में पतञ्जलि मुनि ने चित्तप्रसादन के उपाय बताये हैं जिसमें ईश्वर-प्रणिधान से अथवा जिस विषय में अपनी रुचि हो, उसी पर ध्यान लगाने से चित्त प्रसादन होता है| (**यथाभिमतध्यानाद्वा)**[4] कहकर पतञ्जलि मुनि धार्मिक स्वतंत्रता का पक्ष लिया है जिसे जो अभिमत हो वह उसका ध्यान करे उसी से चित्त को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है। व्यास भाष्य भी इसी विचार का पोषक है- **यदेवाभिमतम तदेव ध्यायेत्**[5] तत्त्ववैशारदीकार का मत है कि जिसे ईश्वर का जो रूप अभीष्ट हो वह उसी का ध्यान करे-

किं बहुना, यदेवाभिमतं तत्तददेवतारूपमिति|[6] **-पा. यो. द.**

ईश्वर का स्वरुप धर्म के आधार पर विविध हो सकता है, परन्तु जीवन का लक्ष्य सुख और शान्ति ही है| इसी शान्ति और आनन्द की प्राप्ति के लिए ईश्वर का इस रूप में भी ध्यान किया जा सकता है कि वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी सगुण परमेश्वर हैं| अथवा इस रूप में भी ध्यान किया जा सकता है कि वह निर्गुण-निरंजन परब्रह्म हैं, जिनमें प्रेम, द्वेष, दया, सृष्टि, स्थिति, संहार आदि कोई गुण नहीं हैं। योगदर्शन ईश्वर के विषय में इतना ही कहता है कि वह कोई ऐसे 'पुरुष हैं, क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से नित्यमुक्त हैं|

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः|[7] **-यो. सू.**

ईश्वर का ऐसा लक्षण करने से किसी धर्म विशेष का ईश्वर योग दर्शन को अभिमत नही है| ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए कोई यज्ञ -याग या अनुष्ठान योगसूत्रों में नहीं बताया गया है। यदि कोई धर्म-सम्प्रदाय अपने अनुयायियों को ऐसी कोई बात बतलाता भी है तो योगसूत्रों में उसका कोई विरोध भी नहीं है, पर योगसूत्र यह अवश्य कहते हैं कि तुम जो कुछ करो, उसे सच्चे हृदय और तन्मयता से करो जिसमें प्राणिमात्र का कल्याण हो आपके विचार शुद्ध हों, आपके कर्म अच्छे हों मेरे विचार में योग दर्शन का प्रतिपादक ग्रन्थ योगसूत्र ऐसा ग्रंथ हैं जिसमें

कोई साम्प्रदायिकता नहीं है। इसलिए कोई ईसाई हो, मुसलमान हो, जैन हो, बौद्ध हो या किसी भी मत का मानने वाला क्यों न हो, प्रत्येक धर्मावलम्बी योग मार्ग पर चलकर अपने अपने धर्म का पालन कर सकता है| योग वह मार्ग है जिस पर चलकर प्राणीमात्र का कल्याण हो सकता है| योग वह पथ है जो सभी धर्मों के अनुयायियों को अपना धर्म पालन करने का मार्ग दर्शाता है| यदि कोई व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म का हो, अपने धर्म का पालन करने में यदि योगसूत्र की शिक्षा से काम लेता है तो इसमें उसका बड़ा लाभ है। यही नहीं, बल्कि योग शिक्षा से अर्थकरी विद्या के अध्ययन में, कृषि और उद्योग-धंधों में, सामरिक शिक्षा में, युद्ध, व्यापार और राज्य शासन में भी काम लिया जाए तो इन क्षेत्रों में भी सफलता निश्चित है।

अष्टांग योग योगदर्शन के साधनपाद वाले भाग में आता है । जिसकी व्याख्या महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अंगों के रूप में की है| अष्टांगयोग के अंतर्गत प्रथम दो अंग- यम और नियम का उपदेश लगभग सभी धर्म अपनी अपनी शब्दावली में देते हैं यम से तात्पर्य है अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से-

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमः|[8] **– यो. सू.**

यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम कहलाते है। सभी यम धर्म के रक्षक है, अतः जहाँ यम धर्म के विरोधी हो जाये वहाँ धर्म को प्रधानता देनी चाहिए। जैसे नीचे विरोधी भावों में बताया गया है।

अहिंसा – "मन, वाणी और कर्म से कभी भी किसी भी प्रकार के प्राणी को दुःख नहीं देना अहिंसा है। दुसरे शब्दों में प्राणीमात्र से प्रेम अहिंसा है।" व्यासभाष्य के अनुसार मनसा, वाचा और कर्मणा सब प्राणियों के साथ द्रोह का अभाव अहिंसा है।[9] विरोधी भाव - देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए की गई हिंसा भी अहिंसा है, क्योंकि वह धर्म की रक्षक है। इसीलिए कहा भी गया है-

अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव चः|[10] – महा. अनु. प.

सत्य – इन्द्रियों और मन के द्वारा जो ज्ञान हो उसे वैसा का वैसा व्यक्त करना सत्य है।[11] विरोधी भाव – लंगड़े को लंगड़ा कहना सत्य है, गूंगे को गूंगा कहना भी सत्य है, किन्तु अहिंसा का विरोधी होने से अधर्म है। अतः व्यर्थ का कटु सत्य कभी ना बोले।

अस्तेय – "दूसरों के विचारों, अधिकारों या वस्तुओं का अपहरण करना चोरी (स्तेय) है, इसके विपरीत अस्तेय है।"

ब्रह्मचर्य – "मन, वचन और कर्म से सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार के मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य है।"

मनसा वाचा कर्मणा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागी ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ।।[12] –या. सं.

इसलिए प्रत्येक साधक को चाहिए कि उत्तेजक पदार्थों के सेवन, कामोद्दीपक दृश्यों के दर्शन, गीतों के श्रवण से बचें और सभी प्रकार से ब्रह्मचर्य की रक्षा करें।

अपरिग्रह – व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आवश्यकता से अधिक धन – सम्पत्ति का संग्रह परिग्रह है और इसके विपरीत इसके अभाव का नाम अपरिग्रह है।[13]

यहाँ चित्तवृत्तयों के निरोध से आत्मस्वरूप में अवस्थित होने को कहा गया है। यम के अन्तर्गतवर्णित सत्य,अहिंसा, अस्तेय, अपिर ग्रह एवं ब्रह्मचर्य कोमहर्षि पतञ्जलि ने सार्वभौम स्वरूप का वर्णित किया है अर्थात् ये जाति, देश, काल और समय से सीमित न होकर सभी पर, सभी समयों में समान रूप से लागू होते हैं –

जातिदेशकालसमयावछिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्|[14] –यो. सू.

नियम – यम की भांति नियम भी प्रायः सभी धर्मों में स्वीकार्य हैं| प्रायः सभी धर्म मनःकायिक स्वछता और पवित्रता का उपदेश देते हैं| सभी नियम आत्मा, मन और इन्द्रियों की स्वच्छता व पवित्रता के पोषक और शोधक है, अतः जहाँ नियम पवित्रता विरोधी हो जाये वहाँ पवित्रता को प्रधानता देनी चाहिए, जैसाकि नीचे विरोधी भावो में बताया गया है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह पांच नियम कहलाते है।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमः|[15] -यो. सू.

शौच –

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।

विद्यातपोभ्याम भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।[16] – म. स्मृ.

अर्थात् जल से बाहर के अंगो यथा हाथ, पैर आदि शारीरिक अंग को शुद्ध रखे, सत्य के पालन से मन को शुद्ध रखे, विद्या और तप से जीवात्मा का शुद्धिकरण करें, ज्ञान से बुद्धि का शुद्धिकरण करें। शौच स्वयं पवित्रता का प्रतीक है अतः इसमें विरोधी भाव संभव नहीं।

सन्तोष – अपने किये गये प्रयत्न के अनुसार जो फल मिले उसमें प्रसन्न रहना संतोष है। कहा भी गया है "सन्तोषी सदा सुखी" जिसे अपने किये गये कर्म में संतोष तथा कर्मफल में विश्वास रहता है वह हमेशा सुखी रहता है। इसलिए आप जो भी करें ईश्वर का कार्य समझ कर करें जिससे आपको असंतोष ना हो।

तप – धर्म और कर्तव्य कर्म के लिए कष्ट सहन को तप कहते है।[17] हमारा धर्म है कि आत्मा को अविद्या की राह से हटाकर विद्या के प्रकाशमय पथ का अनुसरण कराये। इसके निमित्त जो सर्दी – गर्मी, भूख – प्यास आदि कष्ट सहन किया जाता है, वह सभी तप की श्रेणी में आते है। तप संकल्प से किये जाते है, नकल से नहीं। अधिकांश लोग दूसरों का अनुकरण करके व्रत – उपवास आदि रखना शुरू कर देते है किन्तु यह मूर्खता है। आप जो भी तप का अभ्यास करों, उसके पीछे संकल्प होना चाहिए। आपके पास अपने तप का स्पष्ट कारण होना चाहिए कि आप ऐसा क्यों कर रहे है। कोई भी ऐसा तप ना करे , जिससे लाभ के बजाय हानि की सम्भावना अधिकहो।

स्वाध्याय – स्वाध्याय के दो अर्थ लिए जाते है, पहला – स्वयं का अध्ययन करना और दूसरा सद्ग्रंथो का अध्ययन करना। जिस तरह हमें प्रतिदिन भोजन की आवश्यकता होती है उसी तरह आत्मा को भी प्रतिदिन स्वाध्याय रूपी भोजन की आवश्यकता होती है। स्वाध्याय स्वयं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया का नाम है। आज का वातावरण बहुत ही कलुषित हो चुका है, तथा प्रतिदिन मार्गदर्शन प्रदान करने वाले गुरु का सुयोग आज के समय में संभव नहीं। इसलिए विद्वान मनुष्य को चाहिए कि सदग्रंथ को अपना मार्गदर्शक मानकर अपने जीवन को ईश्वरीय मार्ग के लिए प्रशिक्षित करें। प्रत्येक धर्मावलम्बी अपने अपने धर्म ग्रन्थों का पठन कर सकता है, जो उसे आज के कलुषित वातावरण में भी सुपथ पर चला सके|

ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य है जो भी करें, ईश्वर को समर्पित कर दे। इससे कर्ता होने का अहंकार नहीं होगा। ईश्वर को हर समय अपने साथ अनुभव करें। कूर्मपुराण में भी कर्मफल त्याग की भावना से कर्म करने को कहा गया है-

नाहं कर्त्ता सर्वमेतन्मनसा कुरुते तथा|

एतद् ब्रह्मार्पण प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभि||[18] -कू. पु.

इसमें संदेह नहीं कि योगसूत्रों में जो लक्ष्य सामने रखा गया है, वह दृष्टा का अर्थात आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान है।

इसका यह तात्पर्य है कि योगसूत्रों के सिद्धांतों का निरंतर आचरण करने से चित्त सांसारिक भोगों से विरत होकर निज स्वरूप में स्थिर हो जाता है। चितवृत्तियों का यह निरोध किसी भी धर्म-संप्रदाय की शिक्षा के प्रतिकूल नहीं है। ऐसा स्वरूपावस्थान बौद्ध तथा जैन धर्मों में भी प्रतिपादित है। सगुण ईश्वर को मानने वाले संप्रदायों में भी कोई न कोई महान लक्ष्य सामने रहता ही है।

'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है', यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकारों के प्रयासों की सफलता के लिए स्वस्थ शरीर इसीलिए आवश्यक है। योग शिक्षा में आहार-विहार के नियमों का पालन अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट ही कहा है कि जो 'युक्ताहारविहार' नहीं हैं, उन्हें जीवन में कोई सफलता नहीं मिल सकती। यह बिलकुल नही समझना चाहिए कि योग की यह शिक्षा योगियों के लिए ही है, सबके लिए नहीं। 'योगी' शब्द से अत्यन्त व्यापक अर्थ लिया जाए तो जो कोई संसार में सदाचार से रहकर जीवन को सफल करना चाहता है, वही योगी है। इस विषय में कोई मतभेद नही है कि सभी धर्म सदाचार को ही स्वर्ग का सुगम मार्ग मानते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगसूत्र में ऐसे महत्वपूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन किया है, जो सामाजिक सद्भाव का पाठ पढाते है| पातञ्जल योगदर्शन सुखीव्यक्ति से मित्रता की भावना, दुखीव्यक्ति पर करुणा, अच्छे कर्म करने वाले के प्रति प्रसन्नता तथा पापी व्यक्ति के प्रति उपेक्षा की भावना रखने का निर्देश देता है –

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्|[19] -यो. सू.

ये उपदेश अपने शब्दों में बौद्ध धर्म भी देता है| योग में सदाचार का अर्थ केवल सामाजिक शिष्टाचार नहीं है, बल्कि आहार-विहार का नियम भी है। आधुनिक सभ्यता की सब बुराइयों की जड़ आहार-विहार के विषय में किसी मर्यादा का न होना, विषयभोग और अधार्मिकता है। सच्चे सदाचारी मनुष्य को संसार के किसी न किसी धर्म को मानकर चलने में कोई समस्या नहीं होती। सदाचार धर्म की रक्षा करता है और धर्म सदाचार की। सदाचार और धर्म एक दुसरे के पूरक हैं। विज्ञान भी धर्म या सदाचार का विरोधी नहीं है। यौगिक जीवन का अर्थ, संक्षेप में, 'शरीर का युक्त व्यायाम, सादा सात्विक आहार और सद्विद्या का अध्ययन' है। कोई भी वैज्ञानिक क्या इस प्रकार के जीवन को बुरा बता सकता है?

प्रसन्नचित्त और सदाचारी पुरुष को स्वर्ग का सुगम और प्रशस्त मार्ग प्राप्त हो जाता है। वह सबका मित्र होता है। वह न किसी का द्वेष करता है, न कोई उससे द्वेष करता है। क्रोध या लोभ उसके पास फटकने नहीं पाते। धर्मवीरता और नैतिक धीरता में वह किसी के पीछे नहीं रहता। यौगिक जीवन के अनुकूल कोई भी कार्य करने के लिए उसके सामने संसार का मैदान खाली है। वह कला या विज्ञान सीखकर दूसरों को सिखा सकता है। वह धन एकत्र कर गरीबों की मदद कर सकता है। वह दूसरों के कल्याण के लिए नेता या शासक बन सकता है। उसकी मृत्यु भी बड़ी शान्ति के साथ होती है, क्योंकि परलोक वह अपने सामने देखता है। उसका अपना जीवन ही उसके परलोक के दिव्य स्थान का पर्याप्त मूल है।

योगसूत्रों में यौगिक जीवन का यह फल है। जिसमें साम्प्रदायिकता लेश मात्र भी नहीं है। न इसमें अन्धविश्वास की कोई बात है। यह प्राणिमात्र का उपकारक प्रत्यक्ष योग है।

सन्दर्भ सूची

1. **योगसूत्र 1/1**
2. **भगवद्गीता 2/48**
3. **भगवद्गीता 2/50**
4. **योगसूत्र 1/39**
5. **पातञ्जलयोगदर्शनम्- प्रथम खण्ड पृष्ठ - 454**
6. **वही**
7. **योगसूत्र 1.24**
8. **योगसूत्र 2/30**
9. **अंहिसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोह: - व्यासभाष्य, योगसूत्र 2/30**
10. **महाभारत अनुशासनपर्व 116.38**
11. **सत्यं यथार्थे वाङ्गमनसे यथा दृष्टं यथानुमितं यथ श्रुतं तथा वाङ्गमनश्च| व्यासभाष्य-2/30**
12. **याज्ञवल्क्य संहिता**
13. **विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकारणमपरिग्रह इति| व्यासभाष्य-2/30**
14. **योगसूत्र, साधनापाद, सूत्र 31**
15. **योगसूत्र- 2/32**
16. **मनुस्मृति 5/101**
17. **तपो द्वन्द्वसहनम् | व्यासभाष्य, योगसूत्र 2।/30**
18. **कूर्मपुराण 3/16**
19. **योगसूत्र 1/33**

Contributors Details:

पूजा सिंह

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

poojaaaa35@gmail.com

mob. No.- 9598689804